

इस अंक में

प्रायः यह माना जाता है कि सार्वजनिक स्कूलों का खर्चा राज्य द्वारा वहन किया जाना चाहिए। लेकिन क्या राज्य सम्प्रदाय विशेष के स्कूलों को भी पैसा दे अर्थात् उन स्कूलों को जिनमें शिक्षा किसी खास धर्म पर आधारित हो या अच्छाई की किसी विशेष संकल्पना को आधार मानकर शिक्षा दी जाती हो, यह मुद्दा अत्यधिक विवादास्पद है। इस मुद्दे पर जोहन डे जॉंग एवं गेर स्निक का लेख है जिसमें लेखकों ने अपने आपको उदारवादी नजरिये तक सीमित रखते हुए दो परस्पर विरोधी नजरियों का विवेचन किया है। एक तरफ वह 'उदारवादी शिक्षायी' नजरिया है जिसके अनुसार उदार राज्यों को केवल सार्वजनिक स्कूलों को वित्तीय समर्थन देना चाहिए तथा सम्प्रदाय विशेष के स्कूलों को सहन कर लेना चाहिए। दूसरी तरफ 'मानक उदारवादी' नजरिया यह मानता है कि केवल सम्प्रदाय विशेष के स्कूलों को ही आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए। दोनों ही नजरिये उदारवादी निष्पक्षता के सिद्धांत को प्रारंभ से ही स्वीकार कर चलते हैं, लेकिन वे इस सिद्धांत की बिल्कुल अलग-अलग व्याख्या करते हैं। दोनों ही नजरियों में शिक्षा और अच्छाई की संकल्पना के बीच संबंधों पर अलग-अलग पूर्व-मान्यताएं हैं। इस लेख में लेखकों ने इन दोनों नजरियों में अन्तर्निहित मुख्य पूर्व-मान्यताओं की प्रस्तुति और उनका मूल्यांकन किया है। इसके बाद इस वैकल्पिक दृष्टिकोण के पक्ष में तर्क दिये हैं कि उदार राज्य को कुछ शर्तों के साथ सम्प्रदाय आधारित स्कूलों को आर्थिक सहायता देनी चाहिए।

साक्षात्कार में शिक्षाविद् प्रो. कृष्ण कुमार ने एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और उसके तहत तैयार की गयी पाठ्यपुस्तकों को लेकर दायर रिट पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय का तार्किक विश्लेषण किया है। धर्मनिरपेक्षता के बारे में उनका कहना है कि इसका अर्थ है लोगों के लौकिक जीवन से राज्य का रिश्ता, न कि उनके आध्यात्मिक जीवन से। अब अगर इसे दूसरी दिशा में मोड़ें, तो शिक्षा, राज्य की जिम्मेवारी है यह राज्य के ही तंत्र का अंग है, तो फिर शिक्षा में सैक्युलर विचारधारा का प्रभुत्व होना चाहिए, इसे लोकतंत्र के लिए अनिवार्य शर्त होना चाहिए। अगर इस तर्क प्रणाली को ही स्वीकार करते हैं तो फिर अगला चरण हम से यही कहता है कि धर्म से जुड़ी आस्थाओं को, उन आस्थाओं में परिलक्षित होने वाले मूल्यों के लिए व्यक्तिगत जीवन में स्थान हो। लोगों के सामुदायिक जीवन में इसका स्थान हो सकता है लेकिन वो स्थान राज्य द्वारा न तो प्रभावित किया जाना चाहिए और न ही राज्य की कोई दिलचस्पी उनके जीवन के इस पहलू में होनी चाहिए। इस प्रकार शिक्षा का दायरा एक स्वतंत्र वैचारिक दायरा होगा। इस स्वतंत्र वैचारिक दायरे में यह बात भी शामिल है कि सामाजिक जीवन के किसी पहलू पर जांच करने के, उसका विश्लेषण करने के औजार बच्चों को दिए जायें। इन पहलुओं में धर्म भी शामिल है।

प्रो. कृष्णकुमार मानते हैं कि शिक्षा स्वयं अपने आप में मूल्यों का संप्रेषण है। कोई भी शिक्षा मूल्यों का संप्रेषण होती है चाहे वो कितनी ही दुरावस्था में पहुंच चुकी हो। यदि आप बच्चों की शिक्षा की बात कर रहे हैं तो उसे मूल्यों से अलग रख ही नहीं सकते। लेकिन आजकल हम अलग से मूल्यों की चर्चा कर रहे हैं। यह इस बात का

द्योतक है कि शिक्षा का विमर्श स्वयं कितना खोखला या सतही हो चुका है। वे इसे दुर्भाग्यपूर्ण मानते हैं कि पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में भारतीय शिक्षण-विधियों पर कोई चर्चा नहीं हुई है। इस समय भी जो चर्चा का विषय है वह दरअसल पाठ्यक्रम भी नहीं है बल्कि पाठ्यपुस्तक है।

उनके अनुसार शिक्षा में दरअसल वह संभावना होनी चाहिए जो कि बच्चे में स्वयं किसी घटना का प्रमाण जानने या कि उसकी जांच करने का सामर्थ्य उपजा सके, तभी वह विचारधाराओं के जंगल में अपने लिए कोई उपयुक्त विचारधारा चुन सकेगा। यह है जिम्मेदारी की बात जो मुख्यतः शिक्षा के जरिये निभायी जानी चाहिए थी। लेकिन इतिहास की शिक्षा इस जिम्मेदारी से अलग चलकर महज एक नैतिक कथा के रूप में इतिहास के प्राचीनकाल से चली आ रही है। अभी भी वह (बच्चा) स्वयं जांचकर विश्लेषण करने, खोज करने या इतिहासकारों के बीच पाए जाने वाले मतभेद को समझने में असमर्थ है। न्यायपालिका द्वारा पाठ्यक्रम जैसे मुद्दे में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता के प्रसंग पर उनका कहना है, इसका आशय है कि शिक्षा जगत वैचारिक रूप से अत्यंत दरिद्र और अधिनायकवादी शक्तियों का शिकार है।

फिरोज अहमद और वीरेन्द्र सिंह रावत ने आर्य बुक डिपो, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित सामाजिक अध्ययन विषय की पहली और दूसरी कक्षा की पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण किया है। इन पुस्तकों को दिल्ली सरकार के अन्तर्गत चलने वाले सर्वोदय विद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है। लेखकों ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और उसके पश्चात के प्रामाणिक दस्तावेजों का संदर्भ देते हुए बताया है कि राष्ट्रीय स्तर पर पहली तथा दूसरी कक्षाओं के लिए 'सामाजिक अध्ययन' नाम के किसी स्वतंत्र विषय की परिकल्पना नहीं की गयी है। इसके बावजूद उक्त पुस्तकों के प्रकाशक का दावा है कि ये पुस्तकें 'नयी शिक्षा पद्धति के नवीनतम पाठ्यक्रमानुसार' तैयार की गयी हैं।

इन पुस्तकों का विश्लेषण शिक्षणशास्त्रीय तथा सामाजिक पहलुओं को केन्द्र में रखकर किया गया है। लेखकों का तर्क है कि शिक्षण-शास्त्र तथा विषयवस्तु में संवाद का रिश्ता होता है।

ये दोनों आयाम अन्तःक्रियात्मक रूप से सम्बद्ध होते हैं तथा दोनों का अस्तित्व परस्पर स्वतंत्र नहीं है। जहां एक ओर विषयवस्तु पढ़ाये जाने के तरीकों को प्रभावित करती है, वहीं दूसरी ओर शिक्षणशास्त्र इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार के समाज का स्वप्न लेकर ढांचे तैयार किये जा रहे हैं ? शिक्षणशास्त्र स्वयं एक सामाजिक उपक्रम है और सामाजिक परिघटनाओं का अपना शिक्षणशास्त्रीय महत्व है। अतः वे मुद्दे जिन्हें सामाजिक पहलू के अन्तर्गत उठाया गया है उनका शिक्षणशास्त्रीय महत्व कम नहीं है और शिक्षणशास्त्र कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जो मात्र कक्षाओं तक परिसीमित हो।

ओम श्रीवास्तव ने राजस्थान में शिक्षा के क्षेत्र में राज्य सरकार के प्रयत्नों का आकलन करते हुए वित्तीय और संरचनागत संदर्भ में प्रारंभिक शिक्षा और विशेष रूप से जनजाति क्षेत्र में प्रारंभिक शिक्षा की स्थिति पर गंभीर टिप्पणी की है। उनके अनुसार राजस्थान में शिक्षा को सामाजिक सुरक्षा के आधार की तरह समझ कर ही हम इसे नयी दिशा दे सकते हैं। अभी तक यह माना जाता रहा है कि शिक्षा एक प्रकार का भावी विनियोग

है जबकि आज के संदर्भ में शिक्षा को केवल आर्थिक विनियोग की दृष्टि से ना देख कर सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही संदर्भों में देखने की आवश्यकता है। राज्य द्वारा शिक्षा को विभिन्न समाजों के दृष्टिकोण से नियोजित करना होगा। यह इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि शिक्षा वहीं विकसित नहीं हुई है जहां गरीबी है और गरीबी को दूर करने के लिए संसाधनों का विकास एक मूल आधार है।

एक अध्ययन के आधार पर उन्होंने बताया है कि आर्थिक सुधार काल में गरीबों के लिए शिक्षा के अवसर कम हुए हैं और अकुशल मजदूरों की तरह काम करने के सिवा उन्हें किसी प्रकार के प्रशिक्षण देने या उनकी कुशलता बढ़ाने के किसी प्रयास की सूचना अध्ययन क्षेत्रों में कहीं से नहीं मिली। शिक्षा राजस्थान के गरीबों के लिए एक संघर्ष बना हुआ है।

लेख में कहा गया है कि राज्य सरकार ने शिक्षा के लिए बजट में प्रावधान तो किये हैं परन्तु यह प्रावधान अभी भी काफी नहीं है क्योंकि राजस्थान की आधी महिला जनसंख्या को साक्षर करना है। इसी के साथ बालिकाओं की शिक्षा को भी विशेष रूप से आगे बढ़ाना है। जहां शैक्षिक पिछड़ापन है वहां अधिक प्रयासों की आवश्यकता है। बजट में यह भी पूरी तरह से स्पष्ट हो रहा है कि अधिकतम व्यय अध्यापकों के वेतन पर हो रहा है जबकि शैक्षिक गुणवत्ता को लेकर प्रश्न उठते रहते हैं। इसलिए इस विषय पर भी सोचा जाना चाहिए।

शिक्षा के दो पहलू हैं एक संज्ञानात्मक पक्ष और दूसरा भावनात्मक पक्ष। संज्ञानात्मक शिक्षण के तहत भाषा, गणित, भूगोल, समाजशास्त्र एवं विज्ञान आदि का अध्ययन कराया जाता है, 'जबकि भावात्मक शिक्षण में विभिन्न कलाओं के माध्यम से बच्चे के व्यक्तित्व का विकास करना होता है। विभिन्न कलाओं में चित्रकारी, संगीत, नाटक, नृत्य, दस्तकारी एवं खेल आदि गतिविधियां आती हैं। दिनेश पटेल ने बच्चों की सृजनशीलता को सीखने की प्रक्रिया से अविभाज्य प्रतिपादित किया है। अंक में सदाशिव क्षोत्रिय और शिरीष कुमार मौर्य की कवितायें हैं। u